ॐ हनुमते नमः

द्वितीयो अध्यायः

श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद

'सांख्या योग'

अध्याय

दोहा - संजय के मुख से सुना अर्जुन का यह हाल।
दमक उठा मुख लास्य से, राजा हुये निहाल॥

मौन हुये संजय सुना, कुरूक्षेत्र का हाल।
अर्जुन को बेहाल लख, मन नहिं सके संभाल॥

कह उठे धृतराष्ट्र संजय सालता यह मौन है।
पल युगों सा कट रहा, तुम बिन बताये कौन है।। 01

पुनः रखकर धैर्य संजय मर्म बतलाने लगे।
किस तरह से धर्म-रक्षक, धर्म समझाने लगे।। 02

सूक्ष्म दृष्टा, सूक्ष्म सृष्टा, लोकपति हर्षित हुये।
कर्ण घट ले त्वरित सब, आकाश में दर्शित हुये।। 03

चल पड़े कैलाशपति, संग स्वामिनी कैलाश की।
पार्श्व में फैली छटा, भागीरथी के हास की।। 04

भास्कर बोले अरूण से रोक लो गति बाज की।
आज पुनरावृत्ति है फिर, अमिय मय संवाद की।। 05

कृष्ण मुख हो करुण कल्पित, क्लान्त कुन्ती सुत हुये।
दुःख हरन, भवनिधि तरन, भूसुर भरन यों भाषित हुये।। 06

संवेदना संदीप्त हों, संसार में, संशय नहीं।
पर हृदय दौर्बल्य दिखना चाहिए, असमय नहीं।। 07

शूरता ही शूर को, सजती सदा संग्राम में।
कापुरुष है मोह जो धारण करे इस धाम में।। 08

इसलिए तू शोक तज कर, हाथ में कोदण्ड ले।
छोड़ दुर्बलता यहां दुश्वृत्तियों को दण्ड दे।। 09

पूज्य शान्तनु सुत व गुरुवर द्रोंण से यदि युद्ध है।
कह रही प्रज्ञा मेरी, ये युद्ध धर्म विरुद्ध है।। 10

मांग कर भिक्षा भरण पोषण करूँ यदि सिद्धि है।
रुधिर दग्धित भोग से, मिलती न लोक प्रसिद्धि है।। 11

मोह भ्रम से ग्रस्त हूँ, गोविन्द रक्षा कीजिए।
हित, अहित, अनुचित, उचित की, नाथ शिक्षा दीजिए।। 12

नहीं केशव, फिर नहीं, कहता हूँ, ऐसे युद्ध को।
मूक हो अर्जुन गये वाणी हुयी अवरुद्ध यों।। 13

सैन्य दल के मध्य अद्भुत, हो रहा संवाद है।
हँस पड़े हृषिकेश सुन, अर्जुन का यों अवसाद है।। 14

धन्य तुमको है धनंजय ज्ञान के भंडार हो।
सूक्ति सृष्टा, धर्म दृष्टा, तर्क के आधार हो।। 15

किन्तु पंडित जन सदा स्थिर हैं, स्थिति प्रज्ञ हैं।
भूत और भविष्य सृष्टा, कौन है, मर्मज्ञ हैं।। 16

योग बल से, युगयुगान्तर का ये सम्यक ज्ञान है।
कौन थे, क्या हैं और क्या होंगे, मुझे संज्ञान है।। 17

बालपन, यौवन, जरा, भूलोक के शृंगार है।
अस्त होकर उदय होना, जीव को अनिवार्य है।। 18

अन्यथा इस लोक का आधार ही हट जायेगा।
कर्म गति और भाग्य का व्यापार ही मिट जायेगा।। 19

सुख, दु:ख, दारिद्र, वैभव का नहीं स्वामित्व है।
आवागमन है शीत, वर्षा, धूप सम ही अनित्य है।। 20

धीर पुरुषों को सदा समरस ये जीवन तत्व है।
भोग कर सम भाव से, धारण करें अमरत्व है।। 21

तत्व ज्ञानी जानते हैं, असत की सत्ता नहीं।
सत् का झंझावात से डिगता कोई पत्ता नहीं।। 22

विश्व के परिदृश्य पर जो, इन्द्रधनुषी दृश्य हैं।
योग माया रचित मृग भ्रम, भांति ही अदृश्य हैं।। 23

किन्तु इनका हेतु कारक, मैं सभी में व्याप्त हूँ।
तत्व ज्ञानी के सिवा, हर जीव को अज्ञात हूँ।। 24

दृष्टि भ्रम वश, इस जगत में भिन्न सबका स्वत्व है।
योग माया से परे सब एक चेतन तत्व है।। 25

नित्य है, अप्रमेय जो होता न उसका भ्रंश है।
धर्म हित कर युद्ध यदि तुझमें भरत का अंश है।। 26

मारने हित आत्मा करता कोई संकल्प है।
एक मिथ्या दंभ करता ज्ञान उसका अल्प है।। 27

मरा अथवा मारना, कहना न रखता अर्थ है।
यह सनातन सत्य ना तो मारता न ही मर्त्य है।। 28

निरज, अज, अव्यय, अलौकिक, आत्मा सर्वज्ञ है।
नाश हित पुरुषार्थ या चिन्तन करे वह अज्ञ है।। 29

जीर्ण वस्त्रों को बदलना, जिस तरह सुख भोग है।
देह परिवर्तन यथावत, जीव का उद्योग है।। 30

जल, अनल या अनिल का, इसको नहीं संताप है।
शस्त्र कर सकता नहीं, इस पर कोई संघात है।। 31

आत्मा अविकार है, अचिन्त्य है, अव्यक्त है।
अस्तु इसके शोक करने का नहीं, औचित्य है।। 32

चलो माना मृत्यु ही जीवन का उपसंहार है।
एक शाश्वत सत्य पर, ये शोक भी बेकार है।। 33

जब ये ध्रुव निश्चय है, जातक की यहां पर मृत्यु है।
मृत्यु गत हो जीव का, फिर जन्म में अस्तित्व है।। 34

कर भी क्या सकता है प्राणी, जब नहीं अधिकार है।
यह व्यवस्था का विषय है, ब्रह्म का व्यापार है।। 35

तब तो हम कुछ ही समय, भूलोक पर साकार हैं।
वस्तुतः अदृश्य हैं, अव्यक्त हैं, निरधार हैं।। 36

आत्मा को देखना भी एक अलौकिक युक्ति है।
दृष्टि, दृष्टा, दृश्य की इसमें नहीं संयुक्ति है।। 37

वर्ण आश्रम की व्यवस्था से न तब तक त्राण है।
धर्म हित क्षत्रिय करे, जब युद्ध तब कल्याण है।। 38

कीर्ति कर है, लोक अर्जुन, मोक्ष प्रद परलोक है।
भाग्य वश क्षत्रिय को मिलता इस तरह का योग है।। 39

धर्म यश और न्याय का विस्तार होना चाहिए।
पापियों और पाप का, संहार होना चाहिए।। 40

धर्म यश तो जायेगा, वीरत्व भी खो जायेगा।
कापुरुष कहकर तुझे, इतिहास ये दोहरायेगा।। 41

इस तरह तो वैरियों का, तेज बल बढ़ जायेगा।
कुल प्रतिष्ठा मान खोकर, लोक निन्दा पायेगा।। 42

जय, पराजय, लाभ, हानि सुख, दुःख समरूप है।
सार्थक कर जन्म अर्जुन, तेरा क्षत्रिय रूप है।। 43

दुष्कर नहीं संसार कुछ, समभाव धारी के लिए।
ज्ञानयोगी बुद्धियोगी, सांख्य धारी के लिए।। 44

यह निरुपित सत्य शाश्वत ज्ञान है, वेदान्त है।
कवच अनुपम जिन्दगी का, सांख्य का सिद्धांत है।। 45

अति हुये अभिभूत संजय, कर श्रवण सुख धाम को।
अति हुये विस्मित समझकर आत्मा के ज्ञान को।। 46

दोहा- ज्ञानयोग से यदि नहीं, मिटता है भ्रम जाल।
कर्मयोग के मार्ग से, होता जीव निहाल।।

देख अर्जुन जिस समय इस सृष्टि का आरम्भ था।
स्वयं को कर्ता समझ, संयम रहित मार्तण्ड्य था।। 47

हर तरफ दर्शा रहा वह, शक्ति का संजाल था।
सौरग्रह भयक्रान्त थे, हर ओर ज्वालाजाल था।। 48

ब्रह्म को भी क्षोभ था, आगे करें कैसे क्रिया।
तेज से दिनकर के जल जाती थी, रचना प्रक्रिया।। 49

तब प्रकट होकर स्वयं उसको दिया यह ज्ञान है।
कर्मयोगी मार्ग से ही, भास्कर कल्याण है।। 50

दो युगों के बाद श्री मुख से सुना, निज नाम को।
हर्ष विह्वल सूर्य ने, वंदन किया भगवान को।। 51

याद आया जन्म से पहले, वो संज्ञाहीन था।
रन्ध्र था ब्रह्माण्ड में, अति श्याम, शीतल, पीन था।। 52

शून्य था, अब शून्यता भरता हुआ परिवेश है।
सौर मण्डल के पिता का, तेजमय आवेश है।। 53

सत्य है प्रभु की कृपा का, ओर है ना छोर है।
धन्य है वे जीव जिन पर, प्रभु कृपा की कोर है।। 54

यों अरूण को उदधि सुत उदयार्थ बतलाने लगे।
कर्मयोगी कर्म का, भावार्थ समझाने लगे।। 55

जो यहां जन्मा है अर्जुन, मृत्यु को वह पायेगा।
मान, यश, धनधान्य वैभव, सब यहीं रह जायेगा।। 56

योग स्थित कर्म का सारांश, लेकर जायेगा।
यज्ञ, तप और दान का, लाभांश लेकर जायेगा।। 57

तुम विषय सुख भोग में, मन का न यों मंथन करो।
हेतु हेतुक कर्म में, परमार्थ का चिन्तन करो।। 58

हैं अनत सुख भोग जिनमें मन अस्थिर पायेगा।
भोगवादी कर्म से आसक्ति में घिर जायेगा।। 59

वेद, श्रुति, उपनिषद कहते कर्म फल के अर्थ हैं।
स्वर्ग, साधन, कामना हित, कर्म करना तर्क है।। 60

स्वर्ग में हर जीव को, मिलते अनत सुख भोग है।
पुण्य क्षय होने से बनता, जन्म का फिर योग है।। 61

सुख, दु:ख का चक्र यह, जिसका न कोई अन्त है।
कर्मफल की साधना से, जीव ये परतन्त्र है।। 62

अस्तु बस निष्कामता ही, सत्य आत्मानन्द है।
नित्य दर्शन ब्रह्म का, और अन्त परमानन्द है।। 63

दोहा- ताल, तलैया, झील सम, वेदों के संदेश।
अति विशाल जलनिधि मनहुँ जाहि न जानत वेद।।

कर्म करने का यहां हर, जीव को अधिकार है।
किन्तु फल का हेतु तो, आसक्ति है, कुविचार है।। 64

अस्तु फल आसक्त होकर, कर्म करना छोड़ दे।
कर्म हो निष्काम तो, जीवन की धारा मोड़ दे।। 65

योग स्थित कर्म कर, तू छोड़ दे आसक्ति को।
सिद्धासिद्धि त्याग कर सम योग दे अभिव्यक्ति को।। 66

कामना कृत, कर्म वश, क्षण मात्र ही रंगीन है।
भुक्ति के पश्चात् भोक्ता, दीन का ही दीन है।। 67

किन्तु जब समबुद्धि से, फल भाव का ही त्याग हो।
पुण्य क्या है, पाप क्या, इसमें न कुछ अनुराग हो।। 68

तब शुभाशुभ कर्म फल का, फंद ही कट जायेगा।
आत्मा का कर्म से अनुबन्ध ही हट जायेगा।। 69

कर्म बन्धन मुक्त होकर, जीव जब अविकार हो।
सूक्ष्म निर्मल आत्मा मिल, ब्रह्म में साकार हो।। 70

मोह, मल दलदल, विषम से पार जब हो जायेगा।
विषय भोगों से स्वतः, वैराग्य सा हो जायेगा।। 71

श्रुति, विप्रति, विक्षिप्त बुद्धि, जब अचल हो जायेगी।
ब्रह्म को हर गति नियति में, मित्रवत संग पायेगी।। 72

दोहा- कर्म योग का ज्ञान कर, अर्जुन बोले बैन।
स्थिति प्रज्ञा भी कहै, हमसे राजिव नैन।।

किस तरह से बुद्धि केशव, यूँ विरत हो जायेगी।
मोह जल निधि अगम दुस्तर, पार कैसे पायेगी।। 73

क्या है लक्षण, क्या है भाषा, किस तरह का कार्य है।
और स्थिति प्रज्ञ करता, किस तरह व्यवहार है।। 74

दोहा- महाकाल गद्‌गद हुये, सुन कर ऐसा प्रश्न।
उत्तर समझाने लगे, अर्जुन को श्रीकृष्ण।।

कर्म करते हुये अर्जुन कामना से अज्ञ हो।
आत्मा से आत्मवत रह, तुष्ट स्थिति प्रज्ञ हो।। 75

दुःख होने पर नहीं मन में कभी उद्वेग हो।
और न सुख की प्राप्ति में, अनुराग या संवेग हो।। 76

राग, भय, या क्रोध से विचलित न किन्चित मात्र हो।
वो है स्थिति प्रज्ञ, निस्पृह, शुभ, अशुभ से गात्र हो।। 77

कूर्म अंगों को समेटे, सर्व दिशि ज्यों सर्वथा।
यों विरत इन्द्रिय सुखों से तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। 78

इन्द्रियों का विषय भोगों से, न कुछ अनुराग हो।
रस निवृत्ति हो अचल, आसक्ति का परित्याग हो।। 79

इन्द्रियों को पार्थ बस, आसक्ति का आलम्ब है।
भोग आतुर बुद्धि का, करती हरण अविलम्ब है।। 80

संयमित हो इन्द्रियाँ वश में रहे मन सर्वथा।
मम समाहित, ध्यान स्थिर, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। 81

सुनो अर्जुन जब विषय का, पुरुष करता ध्यान है।
तत्समय आसक्ति का आता उसे अज्ञान है।। 82

और फिर होती हृदय में, विषय सुख की कामना।
विषय बाधित कामना का, क्रोध से हो सामना।। 83

तब विमोहित बुद्धि को, रहता न कोई बोध है।
ज्ञान, तप और योग, स्मृति नष्ट करता क्रोध है।। 84

अति विषम दस इन्द्रियों का, प्रबल बल संयुक्त है।
आत्म निग्रह और विरति से, जीव होता मुक्त है।। 85

अन्यथा ये जीव इस, भव पाश से घिर जायेगा।
नष्ट कर सत्कर्म अपने आप, में गिर जायेगा।। 86

किन्तु इन्द्रिय अश्व सुन कौन्तेय यदि अधीन है।
फिर तो परमानन्द की बजती हृदय में बीन है।। 87

यदि हृदय आनन्द नन्दन, ब्रह्म का आवास है।
सांसारिक दु:ख कर सकते न उसमें वास है।। 88

बुद्धि ही स्थिर नहीं, मन भोग के अधीन हो।
शांति खोकर जीव ऐसा भावना से हीन हो।। 89

फिर कहां सुख शांति है, आसक्ति धारी व्यक्ति को।
भोग में जो भूल बैठा, आत्मा की शक्ति को।। 90

जिस तरह जलपोत को, लेता प्रभंजन पाश में।
व्यथित हो जाता है नाविक, नीर निधि के त्रास में।। 91

विषय रत् हो एक इन्द्रिय में, रमण यदि मन करे।
फिर नहीं रहती है प्रज्ञा, योग के आकाश में।। 92

अस्तु जो इस ज्ञान का, इस योग का सर्वज्ञ है।
बुद्धि स्थिर है उसी की, और स्थिति प्रज्ञ है।। 93

रात्रि के अवकाश में, सोता है भोगी भोग में।
किन्तु स्थिर चित्त होता, ब्रह्म योगी योग में।। 94

विषय भोगों हेतु उद्यमरत् हो सारे उद्यमी।
उस समय विश्राम लेता, ज्ञान योगी संयमी।। 95

ज्यों उदधि अविचल, अचल, कितनी हों नीर प्रवाहिनी।
बुद्धि स्थिर यथावत् ही, विषय रस की वाहिनी।। 96

दंभ, ममता, कामना, जिसके न कारागार हैं।
वे हैं स्थिति प्रज्ञ, अविचल, शांति के आगार हैं।। 97

ब्रह्म स्थित जीव वह क्षण भर न मोहासक्त हो।
ज्ञान में और कर्म में जो, इस तरह अनुरक्त हो।। 98

जब तलक जीवित उसे सुख शांति और आनन्द हो।
अस्त हो इस लोक से तो, प्राप्त ब्रह्मानन्द हो।। 99

दोहा- सांख्य योग का पाठ यह, नित्य करे धरि ध्यान।
तिनके मन मंदिर सदा, बिहरै श्याम सुजान॥

विजय धवजा का रंग भी, बदल गया उस काल।
लाल देह की लालिमा, और हो गयी लाल॥

ॐ इति श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद
सांख्य योग द्वितीय अध्याय समाप्त।